वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

September--2025

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

भावनगर - ३६४ ००१.

प्रमाद – एक महारिपु !!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

प्रमाद चोर है। आत्मधनकी चोरी करता है। या प्रमाद महारिपु है, महान दुश्मन है, छुपा दुश्मन है। छुपकरके आत्मा बेखबर रहे वैसे आत्माका अहित करता है। आत्महित त्वरासे नहीं करनेके परिणमनमें प्रमादका अस्तित्व सिद्ध होता है। समझमें आता है कि यहाँ प्रमाद मौजूद है। अपने स्वाध्यायमें यह प्रश्न कभी–कभी सामने आता है कि, दूसरे कार्य कब करें? आत्महितका कार्य त्वरासे करनेका विषय जब–जब चलता है तब दूसरे कार्य कब करें? यह प्रश्न यदि तू उठाता है तो दूसरे कार्य तू अनन्तकालसे करता आ रहा है इस बीच आत्माका हित कब करना? ऐसा प्रश्न तुझे क्यों नहीं उठता? यह प्रश्न हम पूछते हैं। तेरे प्रश्नके उत्तरके रूपमें हमारा यह प्रश्न है कि, तू अनन्तकालसे दूसरा–दूसरा ही करते आया है जैसे देह की देखभाल की, कुटुम्ब–परिवारकी देखभाल की और अनेक प्रकारके बाह्य कार्य, समाजकी और अन्य–अन्य उपाधि तूने बहुत की, तब तुझे प्रश्न क्यों नहीं उठा कि, इस बीच आत्माका कार्य कब करनेंका? हालाँकि दूसरा तो सब अनन्तकालसे कर ही रहे हैं तो आत्महित कब करें? ऐसा प्रश्न क्यों नहीं उठता है? और जब भी यह आत्मकार्यको त्वरासे कर लेनेकी बात सामने आती है तब तुझे ऐसा लगता है कि दूसरे कार्य हम कब करें? वास्तवमें दूसरा तुम कुछ कर ही नहीं सकते हो।

सबसे पहले तो यह नक्की कर कि, कोई दूसरा कार्य तो तुम कर ही नहीं सकते हो। किसी भी परपदार्थमें तेरा स्पर्श, तेरा हस्तक्षेप असम्भव होनेसे कोई भी परपदार्थका कार्य तुम कर ही नहीं सकते हो, ऐसा करनेकी शक्ति ही तेरे आत्मद्रव्यमें नहीं है और स्वभावकी अपेक्षा देखा जाये तो विभावको भी स्वभाव द्वारा नहीं कर सकते हो। कर्ताबुद्धिपूर्वक विभावमें विभाव करते हो यह बड़ा अनिष्ट है जो कि अनन्त संसारका बीज़ है, हालाँकि संसारके अभाव स्वभावी, विभावके अभाव स्वभावी ऐसे स्वभावमें देखे तो उस स्वभाव द्वारा तू विभावको भी नहीं कर सकता। ऐसा कर्ता–कर्मका प्रकरण है या मानों कर्ता–कर्मकी यह चरमसीमा है कि, किसी भी द्रव्यका या भावका कर्तृत्व ही मिथ्याभाव है। किसीको कुछ करने–धरनेका सवाल ही नहीं है।

(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल–१५४, 'अध्यात्मसुधा' भाग–४, दि.–४–७–१९८७, पन्ना–३८२,३८३, प्र.क्र.–११२)

*

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५१, अंक-३३३, वर्ष-२७, सितंबर-२०२५

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके श्री 'परमागमसार'में से चुनी हुई 'कहानरत्नकी किरणें'

जो विकल्प उठते हैं उन्हें धर्मी जानता है पर वह उन विकल्पोंको करता नहीं है। विकल्प सम्बन्धी जो ज्ञान होता है - उसका भी कर्ता विकल्प नहीं । राग होने पर भी, रागके कारण ज्ञानीको राग-सम्बन्धी ज्ञान होता है - ऐसा नहीं है। राग और ज्ञानीके ज्ञानमें ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, राग उस ज्ञानका कर्ता नहीं है। १६६

*

आनन्दसकंद प्रभुके आस्वादन बिना अशुद्धभाव नहीं छूटते और अशुद्ध संस्कार छूटे बिना स्वरूपका अनुभव नहीं होता। रागसे एकताके संस्कार छूटे बिना शुद्ध स्वरूपका अनुभव नहीं होता और शुद्धस्वरूपका अनुभव हुए बिना रागसे एकताके संस्कार नहीं छूटते। महिमावन्त प्रभुकी ऐसी महिमा भासित हुए बिना तुच्छता और पामरताके संस्कार नहीं छूटते और तुच्छता तथा पामरताके संस्कार छूटे बिना महिमावन्त प्रभुकी महत्ता भासित नहीं होती। अतः अशुद्धताका व्यय एवम् शुद्धताकी उत्पत्तिका एक ही काल है। १६७

*

स्वयं अन्तरमें नहीं उतर पाता, इसका कोई कारण तो होना चाहिए न? अनन्त गुणयुक्त अपार महिमावन्त प्रभु हैं, उनकी अनुभूति न होनेका कोई कारण तो होगा न? - या तो परका अभिमान या रागका अभिमान या स्वयं कहाँ अटका है उसकी अनभिज्ञता आदि कारणोंसे अन्तरमें नहीं उतर पाता। १६८

*

'आत्मा ज्ञानमात्र है' ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि आत्मा शरीररूप नहीं, वाणीरूप नहीं, पुण्यपापरूप नहीं और एक समयकी पर्याय मात्र भी नहीं है। 'आत्मा ज्ञानमात्र है' यह कहनेका अर्थ है कि आत्मा ज्ञान-दर्शन, अकार्य-कारण, भावादि अनन्त शक्तिमय है। प्रभु! तेरे घरकी क्या बात है! तेरेमें अनन्त शक्तियाँ भरी हुयी हैं और एक-एक शक्ति अनन्त सामर्थयवान है, प्रत्येक शक्ति अनन्तगुणोंमें व्याप्त है। प्रत्येक

शक्तिमें अन्य अनन्त शक्तिका रूप है, प्रत्येक शक्ति अन्य अनन्त शक्तियोमें निमित्त है। ऐसी प्रत्येक शक्तिमें अनन्त पर्यायें हैं, वे पर्यायें क्रमसे परिणमित होनेसे क्रमवर्ती हैं, तथा अनन्त शक्तियाँ एक साथ रहनेके कारण वे अक्रमवर्ती हैं। ऐसे अक्रमवर्ती और क्रमवर्ती गुण-पर्यायोंका पिण्ड - वह आत्मद्रव्य है। द्रव्य शुद्ध है, गुण भी शुद्ध है तथा उन पर दृष्टि करनेसे परिणमन भी शुद्ध ही होता है। १६९

*

मैं ज्ञानमात्र वस्तु हूँ - ऐसी दृष्टि होते ही पर्यायमें जीवत्व शक्तिका परिणमन हुआ, उसके साथ ही ज्ञान-दर्शन-आनन्द, अकार्य-कारणत्व आदि अनन्त शक्तियाँ पर्यायमें उछलती हैं, प्रकट होती हैं।

प्रश्न :- उछलती हैं - इसका अर्थ क्या?

उत्तर :- द्रव्य वस्तु है, उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं, जहाँ एक शक्तिका परिणमन होता है, उसी समय अनन्त शक्तियाँ एकसाथ परिण-मित होती हैं - इसीको उछालना कहते हैं। १७०

*

अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ती स्वरूप भगवान आत्माके अनुभवके लिए-निमित्त अथवा व्यवहार रत्नत्रयरूप रागके अवलंबनकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जीव स्वयंके शुद्ध स्वरूपको स्वयं ही स्वयंके द्वारा अनुभव करनेमें समर्थ है। भगवानकी वाणीसे अनुभव हो अथवा गुरुके उपदेशसे अनुभव हो - ऐसा है ही नहीं। स्वयंके द्वारा शुद्ध स्वरूपका अनुभव करनेकी सामर्थ्यसे ही जीव द्रव्य शोभायमान है । स्वयं स्वयंके द्वारा शुद्ध स्वरूपका अनुभव करते हुए समस्त जगतका साक्षीभावरूप शोभित होता है - अतः परकी अथवा रागकी अपेक्षा बिना तूँ तेरे शुद्ध स्वरूपका अनुभव कर। १७१

*

अनुभवकी विधिका वर्णन करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि जीव द्रव्य स्वयंके द्वारा शुद्ध स्वरूपका अनुभव करनेमें समर्थ है। रागकी मन्दता थी या बहुत व्रत-तप आदि किये थे इसलिये आत्मज्ञान हुआ - ऐसा नहीं है। निजस्वरूपका ज्ञान नहीं था तबतक जो जीव अज्ञानवश विकार भावोंका वेदन और अनुभव करनेमें समर्थ था वह स्वयं ही स्वयंके द्वारा निजशुद्ध द्रव्यका अनुभव करनेमें समर्थ है, परन्तु अज्ञानीको निजद्रव्यकी सामर्थ्यका भान ही नहीं है। १७२

*

जब जीव आनन्द स्वभावका अनुभव करनेमें समर्थ हुआ तबसे समस्त जगतका साक्षी हो गया। परवस्तु मेरी है - ऐसी दृष्टि छूटनेसे वह उसका साक्षी हुआ है। पर मेरा है और मैं उसका - ऐसी मान्यता छूट गयी है और सकल पर द्रव्योंका जाणनशील हो गया है। अरे! परमात्मा हो तो भी मैं तो उनका जाननेवाला हूँ और स्त्री-पुत्रादि हों उनका भी मैं जाननेवाला हूँ, वे कोई मेरे नहीं। मेरा क्या है? - कि ज्ञान और आनन्द स्वरूप - वह मैं हूँ, इस प्रकार निज वस्तुका स्वयंके द्वारा अनुभव करता है और निज वस्तुसे भिन्न वस्तुओंका ज्ञाता रहता है। १७३

*

साधक जीव परद्रव्यरूप-द्रव्यकर्म, दया-दान आदि - परद्रव्यरूप-भावकर्म और शरीरादिके प्रति उदासीन है, क्योंकि

शुद्धस्वरूपका अनुभव होनेसे उसे शुद्ध चैतन्य ही उपादेय है। जबसे ध्रुवको ध्यानमें लेकर आत्मअनुभव हुआ, तबसे वही जीव पूर्णानन्द स्वरूपको उपादेय जाननेसे रागदिरूप उठने वाले विकल्पोंके प्रति उदासिन है । १७४

*

जो निज स्वरूपको नहीं जानते ऐसे अज्ञानी जीव रागके साथ एकताबद्धि कर 'राग मेरा कर्तव्य है' - ऐसे अज्ञानवश कर्ता-कर्मरूप प्रवृत्ति कर रहे हैं । रागके साथ एकत्व माना है, परन्तु ज्ञायक प्रभु एकरूप हुआ नहीं। रागसे एकताबुद्धि तो अज्ञानका अभ्यास है और रागसे भिन्न होकर ज्ञायकका अभ्यास - वह धर्मका अभ्यास है, ज्ञानका अभ्यास है। १७५

*

प्रश्न :- क्या हमारे लिए इस चक्करसे छूटनेका कोई रास्ता नहीं है?

उत्तर :- 'परसे भिन्न हूँ' - ऐसा भेदज्ञान करना - संसार चक्रसे छूटनेका यही एक मात्र रास्ता है, दु:खसे छूटनेका अन्य कोई रास्ता नहीं है। १७६

*

प्रश्न :- धर्म करना हो पर कुगुरु मिल जाए तो क्या करें?

उत्तर :- अंदरकी सच्ची पात्रता हो तो यथार्थ निमित्त सहज ही मिल जाते हैं, (यहाँ तक कि) साक्षात् भगवान मिल जाते हैं। सिंह जैसे प्राणीको भी अंतरयोग्यता जाग्रत होते ही आकाशसे वनमें नीचे उतरकर मुनिराजने बोध दिया था। पात्रता हो तो निमित्तका योग किसी न किसी प्रकार मिल ही जाता है। अंतरपात्रता हो और यथार्थ योग न मिले - यह असंभव है। १७७

*

प्रश्न :- शुद्धनयका विषय अंश है या अंशी?

उत्तर :- नयका विषय अंश है।

प्रश्न :- शुद्धनयका विषय परिपूर्ण है न?

उत्तर :- परिपूर्ण होने पर भी वर्तमान पर्याय रहित होनेसे वह अंश कहा जाता है । परन्तु इस अंशके त्रिकाली होनेकी अपेक्षासे उसे अंशी भी कहते हैं। १७८

*

एक ओर ज्ञान-सिन्धु है व दूसरी ओर भव-सिन्धु है - जहाँ रुचे वहाँ जा। १७९

*

प्रश्न :-सविकल्प द्वारा निर्विकल्प हुआ जाता है न?

उत्तर :-सविकल्प द्वारा निर्विकल्प हुआ जाता है - इसका अर्थ यह नहीं है कि सविकल्पसे निर्विकल्प होते हैं, परन्तु निर्विकल्प होनेके पूर्व आनेवाले 'मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ' - ऐसे विकल्पोंसे भी छूटकर अन्तर अभेद स्वभावका आश्रय लेते ही निर्विकल्प होते हैं, तब उपचारसे कहा जाता है कि वह सविकल्प द्वारा निर्विकल्प हुआ। १८०

*

प्रश्न :-'समयसार' की गाथा १३ मे कहा है कि नवतत्त्वको भूतार्थसे जानने पर सम्यग्दर्शन होता है - वहाँ भूतार्थसे श्रद्धा होने पर सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा क्यो नहीं कहा?

उत्तर :- जाने बिना श्रद्धा नहीं होती इसलिए 'भूतार्थसे जानने पर' ऐसा कहा है, क्योंकि जिसे जानते हैं उसीकी श्रद्धा होती है,

जाने बिना श्रद्धा नहीं होती। १८१

*

प्रश्न :- ज्ञान और श्रद्धा होनेका एक ही समय है या समयभेद है?

उत्तर :- एक ही समयमें ज्ञान - श्रद्धान साथ होने पर भी ज्ञानको कारण कहा है, और श्रद्धानको कार्य कहा है। १८२

*

एक-एक गुणका परिणमन स्वतंत्र और अलग नहीं होता, परन्तु अनन्त-गुणमय द्रव्यके परिणमित होने पर गुणोंका साथ-साथ परिणमन होता है। एक-एक गुण पर दृष्टि डालनेसे गुणका शुद्ध परिणमन नहीं होता, परन्तु द्रव्य पर दृष्टि देनेसे अनन्त गुणोंका निर्मल परिणमन होता है, - आशय यह है कि गुण भेद परसे दृष्टि हटाकर अनन्त गुणमय द्रव्यको दृष्टिगत करते ही द्रव्य शुद्धरूपसे परिणमित होता है। १८३

*

प्रश्न :- क्या ज्ञानविभावरूप परिणमित होता है?

उत्तर :- ज्ञानमें विभावरूप परिणमन नहीं होता। ज्ञान स्व-पर-प्रकाशक स्वभावी है, पर जो ज्ञान स्वको प्रकाशित नहीं करता और केवल परको ही प्रकाशित करता है - वह ज्ञानका दोष है। १८४

*

प्रश्न :- मिथ्या श्रद्धाके कारण ज्ञान विपरीत कहलाता है?

उत्तर :- मिथ्या श्रद्धाके कारण ज्ञानको विपरीत कहना तो निमित्त अपेक्षाका कथन है। ज्ञान स्व-प्रकाशक होने पर भी स्वको प्रकाशित नहीं करता, वह ज्ञानका अपना दोष है । १८५

*

प्रश्न :- सम्यग्दृष्टिको शुभ भाव आते हैं, वह उनमें उसी समय उदासीन है कि शुभ-भावसे हटकर आत्मोन्मुख होने पर उदासीन है?

उत्तर :- सम्यग्दृष्टिको शुभभाव आते हैं - वह उनमें उसी समय उदासीन है और उनसे हटकर आत्मोन्मुख होनेपर तो वीतरागता ही है। अतः वह शुभ भावके समय भी उदासीन है। १८६

*

प्रश्न :- सम्यग्दर्शन होने बाद वास्तवमें ऐसा खयाल आता है न कि विकार भाव दुःखरूप हैं?

उत्तर :- सम्यग्दर्शन होने बाद ही विकारका दुःख यथार्थरूपसे भासित होता है, परन्तु उसके पूर्व भी जिज्ञासुको इतना तो खयालमें आ जाता है कि पर ओर झुकनेवाली वृत्तिमें आकुलता होती है, जिस कारण वह विकारसे हट कर स्वभावकी ओर ढ़लता है। १८७

*

प्रश्न :- सम्यग्दर्शन होने के बाद ही तत्त्वकी ये सब बातें समझमें आती हैं, या पहले भी?

उत्तर :- सम्यग्दर्शन होनेके पूर्व प्रयोजनभूत नवतत्त्वकी सभी बातें लक्ष्यमें आ जाती हैं, बादमें अनुभव होता है। वस्तुका स्वरूप क्या है, मुनिपना व केवलज्ञान क्या है, मैं कौन हूँ आदि नवतत्त्वके भिन्न-भिन्न स्वरूप जिस रूपमें हैं उसी रूपमें पहले लक्ष्यमें आते हैं, बादमें अनुभव होता है। १८८

*

जीवको अधोगतिमें जानेका कारण – कुटुंबमोह और परमें निजबुद्धि !

श्रीमद् राजचंद्र, पत्रांक-५१० पर प्रवचन

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

(गतांकसे आगे...)

चलते विषयमें क्या (चल रहा) है, *'जीव यदि जरा भी विचार करे तो यह बात स्पष्ट समझमें आने जैसी है कि इस जीवने...'* इस जीवने माने हमारे जीवने – third person नहीं लेना। हमारे जीवने, *'किसीमें पुत्रत्वकी भावना करके अपना अहित करनेमें कोई कसर नहीं रखी,...'* (लोग क्या मानते हैं?) कि, देखिये! हमको तो दो-चार रोटी खानी है। लेकिन परिवारमें इतने लड़कें-लड़की हैं, तो उनके लिये तो कुछ करना चाहिये कि नहीं? उनके लिये जो भी करता है, उसमें इतना कर्मबंध करता है, इतना कर्मबंध है कि अपना अहित करनेमें कोई कसर नहीं रखते।

'और किसीको पिता मानकर भी वैसा ही किया है,...' किसीने पुत्रके लिये किया तो किसीने पिताके लिये किया, किसीने भाईके लिये किया, किसीने दूसरे-दूसरे परिवारके (सदस्योंके) लिये किया। *'और कोई जीव अभी तक तो पिता पुत्र हो सका हो, ऐसा देखनेमें नहीं आया।'* क्योंकि यह भी एक जीव है। परिभ्रमण करता हुआ प्रारब्धके योगसे यहाँ संयोग हुआ है। वास्तवमें वह कोई पिता पुत्र होता नहीं है और ऐसा बनता है कि, दादा है वह पौत्र बन जाता है, क्या करोगे? आज तो दादा है माने पिताके पिता (हैं) (वे) वृद्ध हुए और (मरकर) पुत्रवधुके पेटमें आ जाते हैं। क्या करोगे? यहाँ आयु पूरी हुई और यहाँ गर्भमें आना हो जाता है। उसे दादा कहेंगे या पौत्र कहेंगे? क्या कहेंगे? वास्तवमें (कुछ) नहीं है। फिर भी जैसा संबंध बनता है वैसा व्यवहार करनेमें आता है। व्यवहारकी बात अलग है। निश्चयसे – वास्तवमें कोई किसीका पिता पुत्र हो सकता नहीं है। *'सब कहते आये हैं...'* संसारमें तो सब व्यवहार करते आये हैं, *'कि इसका यह पुत्र अथवा इसका यह पिता है,...'* ऐसा कहते हैं और ऐसा व्यवहार भी होता है। *'परंतु विचार करते हुए स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह बात किसी भी कालमें सम्भव नहीं है।'* वह बन ही नहीं सकता। यह वास्तविकता है। क्यों (सम्भव नहीं है)? *'अनुत्पन्न ऐसे इस जीवको...'* (अर्थात्) इस जीवको उत्पन्न नहीं कर सकते। कोई जीवको नया नहीं बना सकता।

'अनुत्पन्न ऐसे इस जीवको पुत्ररूपसे मानना अथवा ऐसा मनवानेकी इच्छा रहना, यह सब जीवकी मूढ़ता है,...' दूसरे जीवके बाप बनकर बैठ जायें (तो) ज्ञानी कहते हैं कि, यह जीवकी मूढ़ता है और कुछ नहीं है। यह जीवकी मूढ़ता है। और कुछ नहीं है। पिताको

अधिकारबुद्धि छोड़ देनी चाहिये। और पुत्र हो तो पुत्रको भी पुत्रका अधिकारपना छोड़ देना चाहिये। आप मेरे पिता हो इसलिये आपकी सम्पत्तिमें मेरा अधिकार है, ये काम अपना नहीं है। और तुम मेरे बेटे हो इसलिये तुमको मेरी (बात) माननी पड़ेगी, ये काम भी हमारा नहीं है। दोनों बात छोड़ देनी चाहिये। वह स्वतंत्र जीव है। (उसे) सही बात समझाओ, उसके आत्मकल्याणकी वांछा करो - सद्भावना रखो! अगर ठीक हो गया तो, ठीक है! नहीं हुए तो अपनेको अपना बहुत काम बाकी है। अपनेको अपना काम बहुत बाकी है। फुरसद कहाँ है? दूसरोंका लक्ष्य करनेका भी निषेध है तो आगेकी (कोई) बात रहती नहीं है।

मूढ़ता इसलिये कहते हैं, मूढ़ताका क्या मतलब होता है मालूम है? जो जीव अपने आपको नुकसान करता है और मानता है कि मैं ठीक कर रहा हूँ, इसका नाम मूढ़ता है। मूढ़ता किसको कहते हैं? कि अपनेको नुकसान करके भी मानता है कि, मैं सही कर रहा हूँ। यह जीवकी मूढ़ता है। क्योंकि यहाँ तो यह (बात) ली है न? कि, *'अनुत्पन्न ऐसे इस जीवको पुत्ररूपसे मानना...'* यह मेरा पुत्र है और पुत्रको मनवाना कि तुम मेरे पुत्र हो! ख़याल रखना (कि) मैं तेरा बाप हूँ और तुम मेरे पुत्र हो, यह मत भूलना। ऐसी इच्छा रखना, *'यह सब जीवकी मूढ़ता है,...'* ज्ञानी करुणासे कहते हैं। ज्ञानी जो कहते हैं वह करुणासे कहते हैं।

'और यह मूढ़ता किसी भी प्रकारसे सत्संगकी इच्छावाले जीवको करना योग्य नहीं है।' जो सत्संग करता है ऐसे जीवको, ऐसी इच्छा नहीं करनी चाहिये। दूसरेकी बात अलग है। जो सत्संगमें नहीं आता हो, सत्संगमें आनेवाली बातको नहीं समझता हो, ऐसे संसारी जीव तो कुछ भी करेंगे। क्योंकि उसका तो यह विषय नहीं है। इस प्रकारकी समझ भी नहीं (है)। इस प्रकारकी चर्चा-वार्ता उन लोगोंमें होती नहीं। (जब) यह विषय ही उन लोगोंका नहीं है तो क्या करें? लेकिन जो सत्संगमें आता है और इस (विषयकी) चर्चा करते हैं कि, कुटुंब प्रतिबंध क्या चीज़ है? कैसे-कैसे होता है? और (प्रतिबंध) होनेसे जीव अधोगतिमें चला जाता है, कितना बड़ा अपराध है, दर्शनमोह तगड़ा हो जाता है, इसलिये तुमको कुटुंब प्रतिबंध तो होना ही नहीं चाहिये। उनको तो खास जागृति रखनी चाहिये।

'आपने जो मोहादि प्रकारके विषयमें लिखा है, वह दोनोंके लिये भ्रमणका हेतु है,....' त्रिभुवनदासभाईको पत्र लिख रहे हैं तो उनको व्यक्तिगत कह रहे हैं कि, आपने जो मोहादि प्रकारके विषयमें लिखा है कि, हमको हमारे परिवारमें ऐसा मोह रहता है। तो कहते हैं कि, यह तो आपकी भ्रमणा है। ये भ्रमणा नहीं चाहिये। ऐसी भ्रमणा होनी नहीं चाहिये। *'वह दोनोंके लिये भ्रमणका हेतु है,....'* (माने) परिभ्रमणका हेतु है। आप यदि अपने परिवारके प्रति अपनत्व रखोगे (तो) यह परिभ्रमणका हेतु है। देखो! धर्म क्या सिखाता है! बहुत ध्यान देने योग्य बात है। कुटुंबके बीचमें रहो और कुटुंबमें अपनत्व मत करो! धर्म ये नहीं कहता है कि तुम अभी कुटुंब छोड़कर चले जाओ, घर छोड़कर निकल जाओ! अभी ये नहीं कहता (है)।

पहले तुम अपनत्वको छोड़ो फिर तुमको स्वरूप स्थिरताके लिये, आत्मकल्याणके लिये, स्वरूपमें जम जानेके लिये, छोड़नेका अवसर आयेगा तो तुमको कोई ज़ोर पड़ेगा नहीं। ज़ोर नहीं पड़ेगा। 'ये मुझे छोड़ना पड़ता है, ये मैं छोड़ता हूँ' ऐसा नहीं होगा। अपनत्व तो छूट गया है तो फिर कोई आपत्ति नहीं आती। यह क्रम है। त्यागका यह क्रम है कि, पहले (तुम) अपनत्वको छोड़ो फिर वस्तुका त्याग आता है। अपनत्व छोड़े बिना वस्तुका त्याग हो ही नहीं सकता। आ ही नहीं सकता, बन ही नहीं सकता।

मुमुक्षु :- अपनत्व किस आधारसे छोड़ना?

पूज्य भाईश्री :- पहले तो आत्मकल्याणकी भावनाके आधारसे (छोड़ना)। और भावनामें आगे बढ़कर स्वरूपज्ञान होवे तो फिर निज स्वरूपके आधारसे (छोड़ना)। स्वरूपमें अपनत्व करना। स्वरूपमें अपनत्व करनेसे सभी अन्य जीव और अजीव पदार्थसे भिन्नत्व हो ही जायेगा। लेकिन पहलेसे हम कहें कि, आप आत्माके आधारसे अपनत्वको छोड़ो तो आपका यह प्रश्न आयेगा कि, आत्माको तो हम जानते नहीं, समझते नहीं, अनुभव हुआ नहीं (तो) करें क्या? (आपकी) बात तो ठीक है। जिसने आत्माको जाना नहीं, वह (आत्मामें) अपनत्व कैसे करेगा? निजरूपसे निजको जाना नहीं तो अपनत्व होगा नहीं, तो बाहरसे भिन्नत्व भी होगा नहीं। लेकिन आत्मकल्याणकी भावना तो कर सकते हो, हर हालतमें (कर सकते हो), तो उस भावनाके वशात् अपनत्वको ढीला कर दो कि, मुझे कल्याण करना है और अपनत्व अकल्याण कराता है। अकल्याण नहीं करना है तो अपनत्व ढीला तो हो जायेगा। (हो सकता है) कि नहीं हो सकता ? बस ! पहली भूमिका भावनाकी है, दूसरी भूमिका आत्मज्ञानकी है, तीसरी भूमिका आत्मस्थिरताकी है और चौथी भूमिकामें तो भगवान बन जाता है ! खुद ही भगवान बन जाता है। मुनिदशाके बाद (भगवान बन जाता है)। मुनिदशामें बाहरके (सब) संबंध छूट जाते हैं। 'सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने, विचरशुं कव महत्पुरुषने पंथ जो' (अपूर्व अवसर काव्यमें आता है)। महत् पुरुष माने तीर्थंकरादि महापुरुषोंका जो मार्ग है, उस मार्गमें हम कब विचरेंगे? सर्व संबंधका बंधन छोड़ देंगे तब। इसके पहले (कुटुंबके) साथ रहकर अपनत्व छोड़ो।

आपके (सामने) मिठाईका थाल भरा हुआ है उसके सामने बैठकर मिठाईकी मिठास तोड़नी है! क्या? मिठाईका त्याग करके (मिठास नहीं छूटेगी)। मिठाईकी मिठास ऐसे (त्याग करके) नहीं टूट सकती। (कोई ऐसा सोचे) कि, चलो खाना ही नहीं। हम २० सालसे मिठाई नहीं खाते हैं। ऐसे (रस) नहीं छूटता। पहले मिठाईके सामने बैठकर (मिठाईकी) मिठासको छोड़ो कि, इसमें कुछ नहीं है। धर्मकी कार्यपद्धति यही है। धर्मकी कार्यपद्धति ही यही है। आपका रस छूटे बिना त्याग बेकार है। क्योंकि रोग तो अंदर रह गया। आपने (ऊपर)-ऊपरसे मरहम-पट्टी कर दी और अंदरमें तो सड़ा चालू है। दबा हुआ कषाय है। कैसा है? दबा हुआ कषाय है। (यहाँ कहते हैं) *'आपने जो मोहादि प्रकारके विषयमें लिखा है, वह दोनोंके लिये भ्रमणका हेतु है,...'* आपने जो लिखा कि, हमको परिवारके प्रति इतना मोह रहता है,

तो (यह मोह) तो आपका परिभ्रमण बढ़ायेगा। *'अत्यन्त विडम्बनाका हेतु है।'* परिभ्रमण माने क्या? बहुत विडम्बनामय जन्म-मरण होंगे। अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ेंगे।

'ज्ञानीपुरुष भी यदि इस तरह आचरण करे तो ज्ञानको ठोकर मारने जैसा है,...' ज्ञानीको भी कुटुंब प्रतिबंध allowed नहीं है, ऐसा कहते हैं। ज्ञानी भी कुटुंबके बीचमें रहते हैं, (लेकिन उनको भी) कुटुंब प्रतिबंधकी मना है। अगर करे तो वे ज्ञानको ठोकर मारते हैं, ऐसा कहते हैं। (गुजरातीमें) 'ज्ञान ऊपर पग मूकवा जेवुं छे। (ऐसा लिखा है)। हिन्दीभाषामें थोड़ा ज़ोरदार शब्द लिया है - *'ठोकर मारने जैसा है,...'* ज्ञानको ठोकर मारनेकी बात हो गई। ज्ञान तो (परपदार्थसे) भिन्नत्व कराता है। और अपनत्व कर लिया तो ज्ञानके ऊपर पैर रख दिया। यह ज्ञानको ठोकर मार दी!

'ज्ञानीपुरुष भी यदि इस तरह आचरण करे तो ज्ञानको ठोकर मारने जैसा है, और सब प्रकारसे अज्ञाननिद्राका वह हेतु है।' वहाँ तो अज्ञाननिद्रा - मोहनिद्रा आ जायेगी। (वह) मोहनिद्राका कारण है। इसलिये ज्ञानी परिवारके बीचमें रहते हुए भी अपनत्व नहीं करते। कृपालुदेव (व्यापारके लिये) गद्दी पर जाते थे, व्यापार करते थे। (एक पत्रमें क्या लिखा)? कि, 'ये फलाने-फलानेका कर्ज़ चुका रहे हैं।' क्या (लिखा)? कर्ज़ चुका रहे हैं। बाकी हमारे परिवारके लिये हम (व्यापार) करते हैं, सो बात नहीं है। हमारे प्रारब्धको भोग रहे हैं। इतना कर्ज़ा किया है वह कर्ज़ा निपटाते हैं। बाकी हमको कोई पौद्गलिक वैभवकी अपेक्षा नहीं है।

मुमुक्षु :- भाईश्री! कृपालुदेवको दीक्षा लेनेके बहुत भाव थे, फिर भी उनके मातुश्री अनुमति नहीं देते थे, तो फिर वहाँ क्या लेना?

पूज्य भाईश्री :- इस प्रकारकी करुणाका भाव रहता है। माताजीके प्रति करुणा आ गई! बस, उतनी सी बात है। अंतरमें-भीतरमें दीक्षाका जो सातवाँ गुणस्थान है, उतना पुरुषार्थ (अगर) चल जाये तो - तो कोई किसीकी इज़ाज़त (लेनेके) लिये रुकता नहीं है। लेकिन जब इनके प्रति करुणाका विकल्प आ गया तो उतना पुरुषार्थ भी आगे नहीं बढ़ा।

मुमुक्षु :- इस परिस्थितिको कुटुंब प्रतिबंध कहा जायेगा या नहीं?

पूज्य भाईश्री :- बिलकुल नहीं। ज्ञानीको कुटुंब प्रतिबंध होता ही नहीं। ज्ञानी बननेसे कुटुंब प्रतिबंध छूट जाता है। ज्ञानीने अपने स्वरूपमें एकत्वका अनुभव किया है। स्वरूपसे अभिन्न अनुभव किया है। इसलिये अपने स्वरूपको छोड़कर सभी जीव और सभी पदार्थके प्रति भिन्नपना हो गया। अब जो बाह्य त्यागकी बात रही, वह पुरुषार्थ अधीन होती है। जितना पुरुषार्थ चले उतना सहज (त्याग) हो ही जाता है। और नहीं होता है तो थोड़ा विकल्प रह जाता है; फिर भाईका हो, माताका हो, पत्नीका हो या (और) किसीका (भी हो)। उतना विकल्प रह जाता है। लेकिन वह प्रतिबंधके रूपमें नहीं होता। विकल्प आना एक बात है, प्रतिबंध होना दूसरी बात है। विकल्प चारित्रमोह है, फिर भी भिन्नत्वका स्पष्ट प्रतिभास है। भिन्नपना स्पष्ट अनुभवगोचर है और विकल्प है उसका निषेध भी है। ऐसी बात है। प्रतिबंधवालेको

तो अपना दिखता है कि, यह मेरा बेटा है, यह मेरे पिता हैं, यह मेरी पत्नी है, यह मेरे पति हैं, ये मेरे हैं... ये मेरे हैं... ऐसा ही दिखता है। (ज्ञानीको) 'ये मेरे हैं' ऐसा दिखता नहीं है। नज़र-नज़रमें फ़र्क़ है। क्रिया एक सी है - अज्ञानी भी परिवारके बीचमें रहता है (और) ज्ञानी भी परिवारके बीचमें रहते हैं। लेकिन दोनोंकी नज़रमें बहुत फ़र्क़ है।

एक दृष्टांत है। ये जो बिल्ली है (वह) चूहेको भी मुँहमें पकड़ती है और अपने बच्चेको भी मुँहसे पकड़ती है। उसके पास पकड़नेका साधन तो मुँह ही है। जब कि दोनोंकी पकड़में कितना फ़र्क़ है! चूहेको पकड़ेगी तो लहू निकल जायेगा (तो भी) छोड़ेगी नहीं! इतने ज़ोरसे पकड़ेगी कि (चूहेको) खून निकल जायेगा। और अपने बच्चेको पकड़ेगी तो उसको दांत भी नहीं लगे उतनी सावधानी रखेगी! दोनोंको मुँहमें (ही) पकड़ा है। दिखाव तो एक सरीखा है लेकिन पकड़-पकड़में फ़र्क़ है कि नहीं है?

वैसे ज्ञानी भी बेटेको ऐसे ही कहेंगे कि, 'अच्छा बेटा ऐसा करो, मेरे बेटे ऐसा कभी नहीं करना। तुम तो समझदार हो। बेटे! तुम किसके बेटे हो? देखो तो सही' ऐसा भी बोलेंगे!! फिर भी नज़र-नज़रमें फ़र्क़ है। अज्ञानीको अपना बेटा दिखता है, ज्ञानीको अपना नहीं दिखता है। वह बात है।

(यहाँ कहते हैं) *'ज्ञानीपुरुष भी यदि इस तरह आचरण करे...'* माने अपनत्व करके (आचरण करे) *'तो ज्ञानको ठोकर मारने जैसा है, और सब प्रकारसे अज्ञाननिद्राका वह हेतु है। इस प्रकारके विचारसे दोनोंको सीधा भाव कर्त्तव्य है।'* दोनोंको माने आप पति-पत्नी दोनोंको अपने पुत्रादिके प्रति सीधा भाव करो। सीधा भाव करो माने (उसे) अपना मत समझो, अपनत्व मत करो। उसे भी एक जीव समझो। कि जो जीव संसार परिभ्रमण करते हुए, प्रारब्ध योगसे हमारे घरमें एक संयोगमें रहता है। इससे ज्यादा उसके प्रति लगाव मत रखो।

'इस प्रकारके विचारसे दोनोंको सीधा भाव कर्त्तव्य है। यह बात अल्पकालमें ध्यानमें लेने योग्य है।' माने शीघ्र ही ध्यानमें लेने योग्य है। धीरे-धीरे अपनत्व छोडूंगा - यह बात नहीं लेना। मैं कोशिश करता हूँ, मैं प्रयास करता हूँ, मुझे अपनत्व तो है लेकिन मैं अपनत्व छोड़नेका प्रयास करता हूँ, मेरा (अपनत्व) धीरे-धीरे छूटेगा, धीरे-धीरे मेरा छूटेगा - ऐसा नहीं लेना। शीघ्र छोड़ो! वस्तु स्वरूप देखो ! वस्तुका जो स्वरूप है वह तो स्पष्ट भिन्न है। अस्तित्व कहाँ है? परिवारके किसी (भी) सदस्यमें अपना अस्तित्व है क्या? नहीं है। शरीरमें (भी) अस्तित्व नहीं (है तो) परिवारकी बात कहाँ (रही)! शरीर भी मेरा कहा तो मानता नहीं। मानता है क्या? शरीर क्या शरीरका एक बाल भी नहीं मानता। (बाल) कालेमेंसे सफेद होता है, (वह) किसीकी मानता है? नहीं मानेगा। परमाणु-परमाणु स्वतंत्र है, जीव-जीव स्वतंत्र है। सब अनंतगुणके धनी हैं। सब अनंत शक्तिके धनी हैं। हमें किसीका धनी होना नहीं हैं। धनी रहना और दुःखी नहीं होना - ये दो बात बननेवाली नहीं है। धनी हुआ कि उसकी उपाधि आ पड़ी! उपाधि नहीं छूटेगी। धनी हुआ कि उपाधि आ गई!

अधिकार और उपाधि एक सिक्केके दो पहलू हैं। किसी भी प्रकारका अधिकार रखा कि उपाधि आ गई, जाओ! इसलिये अधिकार छोड़ देना। ये अधिकार छोड़ देना - वह *'सीधा भाव कर्त्तव्य है।'* (का मतलब है)। वह सीधा भाव है। और अधिकार रखना वह टेढ़ा भाव है। वह सीधा (भाव) नहीं है।

'यह बात अल्पकालमें ध्यानमें लेने योग्य है।' (यानी) शीघ्र ध्यानमें लेने योग्य है। *'आप और आपके सत्संगी यथासम्भव निवृत्तिका अवकाश लें, यही जीवको हितकारी है।'* कृपालुदेव त्रिभुवनदासभाईको जानते थे और इनके संगमें आनेवाले सत्संगी जीवोंको भी जानते थे। (इसलिये कहते हैं कि) आप और आपके सत्संगी निवृत्ति लें तो अच्छी बात है। निवृत्ति किसके लिये? कि, आत्मकल्याणके लिये। जितने अवकाशमें - माने जितनी हो सके उतनी। *'यही जीवको हितकारी है।'* वह आपके लिये हितका कारण बनेगा।

(कहनेका) मतलब यह है कि, कुछ आयु बीतने पर भी यानी ४०-५० साल हो जाने पर भी और कुछ संपन्नता होने पर भी, (यदि) जीव व्यवसायमें लगा रहता है (तो) वह कुटुंबमें अपनत्वके कारणसे लगा रहता है। अब भी मुझे कुटुंबका कार्य करना है... अब भी मुझे कुटुंबका कार्य करना है... अब भी मुझे कुटुंबका कार्य करना है... अरे...! अपनी आयु कितनी चली गई उसे तो देख! और कब खतम होगी वह तो किसीको पता नहीं। किसके भरोसे (ये सब) प्रवृत्ति तू करता है? ज्ञानी उनको कहेंगे कि, तुम निवृत्ति ले लो। ये अपनत्वको ढीला करके निवृत्ति ले लो। तुम्हारी प्रवृत्ति अपनत्वके कारणसे है। प्रवृत्ति छुड़ानेमें अपनत्व छुड़ानेका अभिप्राय है। लेकिन लड़के line पर नहीं हो तो (उन्हें) line पर तो ले आये कि नहीं ले आये? (तो ज्ञानी कहते हैं) देखो! सब अपना प्रारब्ध लेकर आते हैं। किसी बेटेका प्रारब्ध बाप बनाता है क्या? ये गलत बात है।

विदेशमें तो यह बात ही नहीं है। जबकि वहाँ कोई मोह छूट गया है सो बात नहीं है। वहाँ मोह तगड़ा है तो ऐसी बात है! वहाँ तो क्या है कि, मेरी सम्पत्ति मैं ही पूरीकी पूरी भोगू। लड़केको भी नहीं देनी है। लेकिन अपनेको सीधी बात लेनी है कि उसका मतलब क्या हुआ? कि वह भी अपना प्रारब्ध लेकर आया है। वह उसके प्रारब्ध अनुसार कार्य करेगा। उनको जो भी होगा वह उनके प्रारब्ध अनुसार होगा। इसमें कौन क्या कर सकता है? कि कुछ नहीं कर सकता। अपने अपनत्वके कारणसे जो लगाव है वह अधोगतिमें ले जायेगा। (और वहाँ) बड़ी विडम्बना हो जायेगी। (इस बातको) हलकीसी बात नहीं लेकर गंभीर नुकसानका कारण लेना चाहिये कि, जैसे मैं कोई गंभीर अपराध कर रहा हूँ। ऐसे ले लेना।

अल्पकालमें माने शीघ्र। अभी ही जागृत हो जाओ! ऐसा कहते हैं। चेतावनी दी है। अभी तुम जागृत-सावधान हो जाओ! अभी-अभी सावधान हो जाओ ! अगर तुम अपनत्व करते हो तो अभी-अभी सावधान हो जाओ! इतना काम निपटानेके बाद सावधान होउँगा,

(ऐसा मानकर चलोगे तो) कभी तुम (सावधान) होनेवाले नहीं हो। जिसे अभी नहीं करना है उसे कभी नहीं करना है।

जीव इतने बड़े नुकसानको नहीं देखता है, इसलिये मूढ़ता कहा है। इतने बड़े नुकसानको नहीं देखता है!! तो कितने काल तक तुम परिभ्रमण करोगे!! अगर यह वर्तमान मनुष्यभव तुमने गवाँ दिया, खो दिया तो कितने लंबे काल तक - अरबोंके अरबों काल (वर्ष) तक तुम जन्म-मरण करते रहोगे! परिभ्रमण करते रहोगे! इतने बड़े नुकसानको तुम नहीं देखते हो क्या! इसलिये कहते हैं कि, अल्पकालमें शीघ्र ही सावधान हो जाओ! और अंदरमें गुलाँट खानी है उसमें क्या आपत्ति है? तुमको ये थोड़ी कहते हैं कि तुम कुटुंबको छोड़कर चले जाओ! ये तो कहते नहीं (है)। एक चीज़को भी छोड़नेको नहीं बोलते। लेकिन एक शर्त है कि, एक चीज़में भी अपनत्व नहीं करना है। एक चीज़को छोड़ना नहीं और कोई चीज़में अपनत्व करना नहीं!! जो गुलाँट खानी है वह तो अंदरमें खानी है, उसमें तुमको क्या आपत्ति है? बाहरमें कुछ करना पड़े तो तो जोर लगे, (परंतु) अंदरमें ही अंदरमें परिणाम बदल जायेंगे तो किसीको पता भी नहीं चलेगा। पता किसको चलेगा? कि, जिस पर बहुत प्यार किया है न उसे थोड़ा पता चल जायेगा कि, अभी इनके भावमें थोड़ा फ़र्क़ दिखता है। tone बदल गया है। पहले भी उसी नामसे पुकारते थे, अभी भी वही नामसे पुकारते हैं, लेकिन tone में कुछ फ़र्क़ आ गया है! उनको पता चलेगा उतना चलने दो! चले तो उतना चलने दो।

मुमुक्षु :- उसके गुरुको भी पता चल जायेगा।

पूज्य भाईश्री :- ठीक है, उसमें क्या आपत्ति है? गुरुको तो कोई तकलीफ होनेवाली नहीं है। तकलीफ तो जिस पर माया-ममता होती है, उस पर माया-ममता कम होती है, तो उसको थोड़ी तकलीफ होती है। लेकिन समझदारीसे काम लो तो कोई आपत्ति नहीं है। (समय समाप्त हुआ है, यहाँ तक रखते हैं)।

कर्तृत्वभावकी भयंकरता !!

मुमुक्षु :- अनादिकालसे कर रहे तूफान सब व्यर्थ ही व्यर्थ? अनादिकालसे मैंने यह किया, मैंने दुकान चलायी, मैंने बंद की...ये सब।

पूज्य भाईश्री :- सारे जन्म-मरण करनेके तूफान हैं। परिभ्रमण करनेका यह मूल है। एक मिथ्यात्वके भावमें अनन्त जन्म-मरण करानेकी शक्ति है। एक क्षणके मिथ्यात्वभावमें अनन्त जन्म-मरण करानेकी देन है। और एक सम्यक्‌दर्शनके भावमें अनन्त जन्म-मरणकी श्रंखला तोड़नेकी शक्ति है - ये दो परिणाम प्रतिपक्षभूत हैं, आमने-सामने! अब इसकी कीमत कितनी है यह भलीभाँति समझकर विवेक कर्तव्य है।

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

'संजीवनी मंत्र'

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

ज्ञानियोंकी नीति ऐसी है। जिस नीतिके अनुसार मुमुक्षु चलता है।

मुमुक्षु :- क्या नीति होती है?

पूज्य भाईश्री :- वह ऐसी कि चाहे जैसा उदय आये इसे आत्मकल्याणकी ओर मोड़ देना। चाहे जो आये। उदयकी जातिके दो प्रकार – एक अनुकूलता और दूसरी प्रतिकूलता या जैसे एक शुभ प्रकृतिका उदय है, दूसरेमें अशुभ प्रकृतिका उदय है। परंतु सो तो व्यवहार है। परमार्थ अपेक्षा अनुकूल-प्रतिकूल कुछ है नहीं। परमार्थ अपेक्षासे कहो, निश्चयसे कहो, वास्तविकतासे कहो तो कोई अनुकूल-प्रतिकूल है नहीं। केवल कल्पना है चाहे जो भी हो। आत्मकल्याणकी ओर इसे मोड़ दो अर्थात् आत्मकल्याणके प्रयत्नमें जागृत व सावधान रहना – यह ज्ञानियोंकी नीति है। मुमुक्षु इसका अनुसरण करके ज्ञानी बनता है। फिर आप देखिये आपको संसारके किसी भी प्रसंगमें कोई तकलीफ़ हो तो बताईये! कोई तकलीफ होगी ही नहीं। दूसरा कोई शायद आपको बोल दे कि भाई! अरे आपको तो बहुत कठिन उदय आ गया, बहुत आपत्तिजनक उदय आया (जबकि आपको ऐसा लगेगा कि) नही! नहीं! ऐसा बिलकुल नहीं है। यह तो जो आया अच्छा है। आया सो अच्छा हुआ। आत्मकल्याणमें विशेष अग्रेसर होनेमें इस उदयने मुझे सहायता की है इसलिये मेरा तो वह उपकारी हुआ। जो उपकारी हो उसे बुरा कैसे कहें?

मुमुक्षु :- उलटा आभार मानना चाहिये।

पूज्य भाईश्री :- आभार मानना चाहिये। अतः उदयके लिये 'भले पधार्या' (आपका हार्दिक स्वागत है) का बोर्ड लगाकर ही रखना। उतारना ही नहीं। आंगनमें आमंत्रित करनेके लिये बोर्ड लगाते हैं न? 'भले पधार्या' यानि आपका हमेशा हार्दिक स्वागत है। हम ऐसा लिखते हैं क्या? कि कुछलोगोंका स्वागत है कुछ लोगोंका स्वागत नहीं है? – ऐसा लिखेंगे क्या हम? लिखना उचित है क्या? लिखेंगे तो अच्छा भी नहीं लगेगा। सबके लिये 'आपका स्वागत है' ऐसा ही हम कहेंगे। इसप्रकार सभी उदय प्रसंगका स्वागत है! आने दो!

मुमुक्षु :- भाईश्री सबलोग कहते हैं न! हमें कोई ऐसा मंत्र दे दीजिये कि हमारा कल्याण हो!

पूज्य भाईश्री :- तो लीजिए यह मंत्र! यह मंत्र है। मंत्र देनेवाले तो देते हैं लेकिन लेनेवाला ले तब तो काम हो! ऐसे संजीवनी मंत्र हैं ये सब! guaranteed कहीं भी आपको तकलीफ हो तो बता दो। लाईये! कहीं भी आपको तकलीफ नही होगी। कितना सुंदर मार्ग है! कितना सुंदर मार्ग है! ('स्वानुभूतिदर्शन' प्रश्न-२३०, दि.-१६-८-१९९७, प्र.क्र.-१७२)

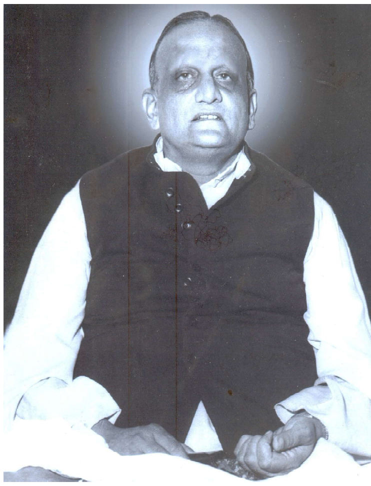

'मार्गदर्शन'

– 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

संग करनेका भाव आवे, तब भी 'संग नहीं करना है' – ऐसा भाव क़ायम (मुख्य) रख कर ही संगका भाव होना चाहिए। ('असंग ही हूँ' ऐसी दृष्टि रखकर अथवा ऐसी दृष्टि करने हेतु सत्संगकी भावना रहनी चाहिए।) **(४३१)**

*

असलमें द्रव्यका (भावभासनपूर्वक) **पक्का (यथार्थ) पक्ष आ जाना चाहिए। अनादिका पर्याय-पक्ष छूट जाना चाहिए।** **(४३८)**

*

प्रश्न :– अंदरमें तो कुछ दिखता नहीं और स्थिरता होती नहीं, इसलिए सुननेका भाव (अभिप्राय) **रहता है। – क्या करें?**

उत्तर :– इसमें तो व्यवहार श्रद्धा भी नहीं आई। 'सुननेका अभिप्राय ही नहीं होना चाहिए।' (सुननेका राग होना और अभिप्राय होना – इन दोनोंमें बहुत फ़र्क़ है।) **सुनते ही इधरका** (अंतर्मुखताका) **प्रयास चालू हो जाना चाहिए।** (तत्त्वश्रवणके संबंधमें ऐसा अभिप्राय रह जाना कि श्रवण करते-करते आत्मलाभ हो जाएगा तो वह साधनविषयक बुद्धिपूर्वककी भूल है जिससे गृहीतमिथ्यात्व होता है। जिसका सुनते ही प्रयास चालू होता है, ऐसे वर्तमान पात्र जीवकी वैसी भूल नहीं होती। यद्यपि सुननेका राग छद्मस्थअवस्था तक संभव है तथापि यथार्थतामें किसी भी रागका अभिप्राय नहीं होता। राग व रागके अभिप्रायमें दिन-रात जितना अंतर है।) **(४३९)**

*

सोचते रहनेसे तो जागृति नहीं होती, ग्रहण करनेसे ही जागृति होती है। सोचनेमें तो वस्तु परोक्ष रह जाती है और ग्रहण करनेमें वस्तु प्रत्यक्ष होती है। सुनते रहने और सोचते रहनेसे तो वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती। (स्वरूप) **ग्रहण करनेका** (-अपने अस्तित्वको रुचिपूर्वक वेदन करनेका) **ही अभ्यास शुरू होना चाहिए।** (मुमुक्षुजीवको सामान्य भावनासे तत्त्वविचार चलता है। सोचना-विचारना तो बहिर्मुख भाव हैं, इसमें वस्तु परोक्ष रहती है; और ऐसेमें स्वयंके महान् अस्तित्वकी जागृति नहीं होती। किन्तु स्वरूपकी अनन्य रुचिसे 'ज्ञानमात्र'के वेदनसे प्रत्यक्ष तौरसे अस्तित्व ग्रहणका प्रयास होना चाहिए – ऐसे प्रयाससे अंतर्मुखता प्राप्त होती है।) **(४५४)**

'तू परमात्मा है' – ऐसा नक्की कर !

तत्त्वचर्चा मंगलवाणी-सीडी –१५ – A , B

– प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

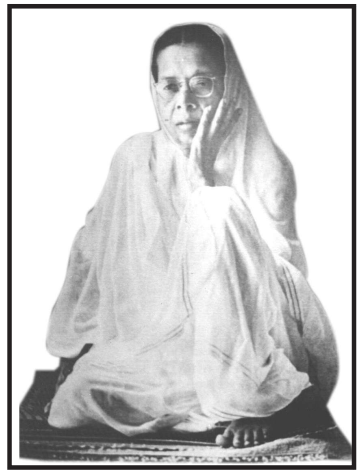

मुमुक्षु :– माताजी! भावभासन की परिणति की, सविकल्पदशा की ज्ञान की परिणति के साथ तुलना कर सकते हैं?

समाधान :– उसे सहज होता है, उसकी तुलना नहीं कर सकते। इसको तो अभी प्रयासपूर्वक होता है। ज्ञानी की दशा प्रतिक्षण, उसकी सहज ज्ञाताधारा (चलती है)। उसे याद नहीं करना पड़ता। इसे याद करना पड़ता है, भूल जाता है। एकत्व हो जाता है, फिर याद आता है कि मैं तो भिन्न हूँ। ऐसे भूल जाता है। एकत्व-तन्मय हो जाता है। मैं भिन्न हूँ, (यह भूल जाता है)। यह एकत्वबुद्धि करने जैसी नहीं है। वैसे ये भूल जाता है, सहज प्रयास नहीं है इसलिये। ये भूलता नहीं है, प्रतिक्षण उसकी धारा चलती है। उसकी तो ज्ञाता की परिणति ही चलती है। शांतिमय, समाधिमय ज्ञाता की परिणति। जिस क्षण विभाव उत्पन्न होता है, उसी क्षण उसकी न्यारी परिणति, याद किये बिना सहजरूपसे साथ होती है। उसे सहज प्रयत्नपूर्वक खड़ी है, सहज प्रयत्न। प्रयत्न है, सहज प्रयत्नसे खड़ी है। लेकिन उसे याद नहीं करना पड़ता। विकल्प आया बादमें याद आया ऐसे नहीं। जिस क्षण विकल्प या विभाव, जो राग या द्वेष के विकल्प के वक्त न्यारी परिणति उसकी खड़ी ही होती है। उसका विभाव की ओरसे पूरा रस टूट गया है। सब प्रकारसे रस टूटा है और उसकी ज्ञाता की धारा सहज चलती रहती है। उसे याद नहीं करना पड़ता और सहज प्रयत्न चलता है।

मुमुक्षु :– माताजी! एक प्रश्न है कि पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत में आता है कि मैं ही परमात्मा हूँ ऐसा नक्की कर, मैं ही परमात्मा हूँ ऐसा निर्णय कर, मैं ही परमात्मा हूँ ऐसा अनुभव कर और नक्की, निर्णय कर और अनुभव कर, उसमें पूज्य गुरेदवश्री क्या कहना चाहते हैं, कृपा करके समझाईये।

समाधान :– गुरुदेव तो बारंबार कहते थे, तू परमात्मा है ऐसा नक्की कर। अनादिसे विभाव पर दृष्टि है, पर्याय पर दृष्टि है इसलिये तू परमात्मा है ऐसा नक्की कर। ऐसा गुरुदेवने तो बारंबार बहुत स्पष्ट करके समझाया है कि तू परमात्मा है ऐसा नक्की कर। जैसे भगवान हैं वैसा ही तू है, ऐसा नक्की कर। क्योंकि तू तुझे भूल गया है। तू तो परमात्मा है। पर्याय में तू रुक गया, ये विभावदशा में तू विभावरूप हो गया, मैं शरीररूप हो गया, मेरे में कोई शक्ति नहीं है ऐसा हो गया है। लेकिन तू परमात्मा है, तेरे स्वभाव को तू पहचान, ऐसा गुरुदेव को कहना था। बारंबर कहते थे कि तू परमात्मा है। भगवानने कहा है, तू परमात्मा है। गुरुदेव बारंबार कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञदेवकी ध्वनि में आया है, लाखों-क्रोड़ो देवों की उपस्थिति में भगवानने कहा कि तू परमात्मा है। लेकिन तू परमात्मा है, ऐसा नक्की कर। परन्तु भगवान आप

परमात्मा हो ऐसा तो नक्की करने दो। लेकिन भगवान परमात्मा कब नक्की हो? कि स्वयं परमात्मा है, ऐसा नक्की करे तो भगवान परमात्मा को पहचानेगा।

स्वयं को पहचाने वह भगवान को पहचाने, भगवान को पहचाने वह स्वयं को पहचानता है। इसलिये तू परमात्मा है ऐसा नक्की कर, ऐसा गुरुदेव बारंबार कहते थे और उसका तू अनुभव कर। उसका अनुभव करनेसे परमात्मा कैसे हैं, उसकी तुझे अनुभूति होगी। अनन्तकालसे निगोद में अनन्त भव किये, अनन्त भव निगोद के किये। बाकी चारों गति के भव किये, उसमें तू तुझे भूल गया। तेरे परमात्मा की शक्ति तो वैसी की वैसी है। तेरा सामर्थ्य वैसा का वैसा है। तू अनन्त शक्तिसे भरपूर दिव्यमूर्ति देव है। उसे तू पहचान, उसका निर्णय कर, बराबर नक्की करके फिर अन्दरसे भेदज्ञान करके, विकल्पसे छूटकर उसका अनुभव कर तो तुझे मुक्ति का मार्ग प्रगट होगा और वह मुक्ति का मार्ग प्रगट होनेसे परमात्मा का स्वरूप तुझे पूर्ण प्रगट (होगा), पूर्ण परमात्मा होगा। तू शक्तिरूपसे परमात्मा है ऐसा नक्की कर तो उसप्रकार का पुरुषार्थ उत्पन्न होगा। नक्की किये बिना पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होता।

जैसे स्फटिक स्वभावसे निर्मल है, स्फटिक मैला नहीं हुआ है। सुवर्ण और पाषाण दोनों साथ में होते हैं, तो भी सुवर्ण तो सुवर्ण ही है। वैसे तू स्वयं परमात्मा है। कर्मके साथ रहा, विभाव अनेक जात के हुए, अनेक जात के अध्यवसाय हुए तो भी तू तो वैसा का वैसा है। इसलिये तू उसे बराबर नक्की कर। स्फटिक स्वभावसे निर्मल है, लेकिन लाल, पीले आदि फूल दिखते हैं तो लाल–पीला दिखता है, परन्तु स्फटिक तो वैसा का वैसा है।

इसप्रकार तू परमात्मा अनन्त शक्तिओंसे भरपूर, जैसे सिद्ध भगवान हैं वैसा तू है। जैसे जिनेश्वरदेव समवरणसर में बिराजमान हैं, अंतर आत्मा की स्वानुभूति पूर्णरूपसे कर रहे हैं, उनकी जैसी शक्ति है वैसी ही तेरी शक्ति है। तू पूर्ण सामर्थ्यसे भरपूर है। ऐसे परमात्मा की महिमा कर, उसका विचार कर, उसे नक्की कर। विचारसे नक्की कर तो तुझे परमात्मा बराबर पहचानने में आयेंगे। और फिर अंतर में जाकर उसकी अनुभूति कर तो तुझे वह परमात्मदेव पहचानने में आयेंगे। बाहरसे नहीं, बाह्यदृष्टिसे पहचानने में नहीं आयेंगे। अंतर दृष्टि कर तो वह परमात्मा तुझे पहाचनने में आयेंगे। ऐसा बारंबार गुरुदेव कहते थे और बारंबार उनके प्रवचन में यही आता था कि तू परमात्मा है ऐसा नक्की कर।

(तत्त्वचर्चाका शेष अंश अगले अंकमें...)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (सितंबर–२०२५, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि

श्रीमती वंदनाबहिन रणधीर घोषाल, कोलकाता

की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।

अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

क्षमापना

हे भगवन्! मैं बहुत भूल गया, मैंने आपके अमूल्य वचनोंको ध्यानमें लिया नहीं। आपके कहे हुए अनुपम तत्त्वोंका मैंने विचार किया नहीं। आपके प्रणीत किये हुए उत्तम शीलका सेवन किया नहीं। आपकी कही हुई दया, शांति, क्षमा और पवित्रताको मैंने पहचाना नहीं। हे भगवन्! मैं भूला, भटका, घूमा-फिरा और अनंत संसारकी विडंबनामें पड़ा हूँ। मैं पापी हूँ। मैं बहुत मदोन्मत्त और कर्मरजसे मलिन हूँ। हे परमात्मन्! आपके कहे हुए तत्त्वोंके बिना मेरा मोक्ष नहीं। मैं निरंतर प्रपंचमें पड़ा हूँ। अज्ञानसे अंध हुआ हूँ, मुझमें विवेकशक्ति नहीं है और मैं मूढ़ हूँ, मैं निराश्रित हूँ, अनाथ हूँ। नीरागी परमात्मन्! मैं अब आपकी, आपके धर्मकी और आपके मुनियोंकी शरण लेता हूँ। मेरे अपराधोंका क्षय होकर मैं उन सब पापोंसे मुक्त होऊँ यह मेरी अभिलाषा है। पूर्वकृत पापोंका मैं अब पश्चात्ताप करता हूँ। ज्यों-ज्यों मैं सूक्ष्म विचारसे गहरा उतरता हूँ त्यों-त्यों आपके तत्त्वोंके चमत्कार मेरे स्वरूपका प्रकाश करते हैं। आप निरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंदस्वरूप, सहजानंदी, अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी और त्रैलोक्यप्रकाशक हैं। मैं मात्र अपने हितके लिये आपकी साक्षीमें क्षमा चाहता हूँ। एक पल भी आपके कहे हुए तत्त्वोंकी शंका न हो, आपके बताये हुए मार्गमें अहोरात्र मैं रहूँ, यही मेरी आकांक्षा और वृत्ति हो! हे सर्वज्ञ भगवन्! आपसे मैं विशेष क्या कहूँ? आपसे कुछ अज्ञात नहीं है। मात्र पश्चातापसे मैं कर्मजन्य पापकी क्षमा चाहता हूँ। – ॐ शांतिः शांतिःशांतिः।

✻ ('श्रीमद् राजचंद्र' शिक्षापाठ-५६)

उत्तम क्षमापना (भाद्रपद वदि एकम)

आज दिन पर्यंत वीतराग देव-गुरु-शास्त्र प्रति या किसी भी जीव के प्रति जो कुछ भी अविनय और आशातना के परिणाम हुए हों उनकी शुद्ध अंत:करणपूर्वक क्षमा याचते हैं। वीतराग देव-गुरु-शास्त्र एवं वीतराग आप्त पुरुष द्वारा बोधित परमतत्त्व के प्रति सदा शरणागतरूप से रहें यही भावना आज के दिन भाते हैं।

– 'स्वानुभूतिप्रकाश' परिवार

‘द्रव्य दृष्टिप्रकाश’ हिन्दी एवं गुजराती (नई प्रत)

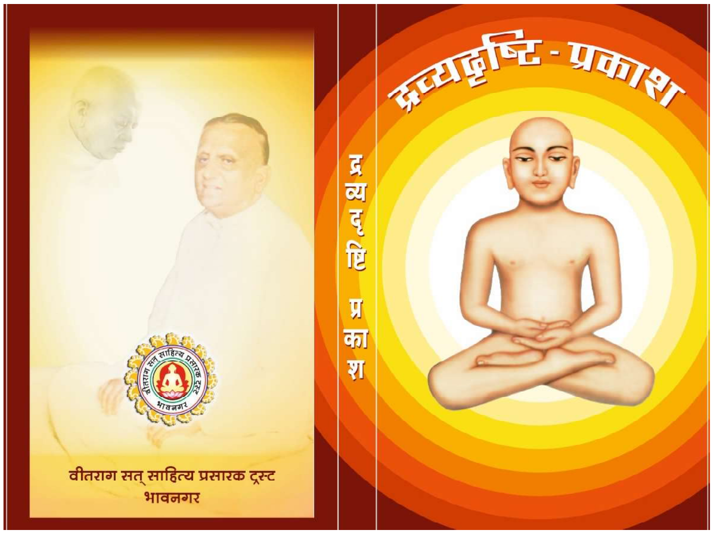

वस्तु व्यवस्थाकी समझमें कोई गड़बड़ी न हो और पुरुषार्थको उजागर करने हेतु यदि कोई शास्त्र पढ़ने योग्य है तो ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ उत्तम शास्त्र है ऐसा कहना उचित है। बहुत उत्तम शास्त्र है! समझमें द्रव्य–गुण–पर्याय विषयक या दूसरा कोई विपर्यास न हो, वस्तु व्यवस्थाकी समझ स्पष्ट हो, अब अंतरमें पुरुषार्थ पूर्वक ढलना हो इसके लिये विशेष निमित्तभूत शास्त्र अगर कोई चाहिये तो ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ इसके योग्य शास्त्र है।

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

(जिन जिज्ञासुओंको आवश्यकता हो वे मंगवा सकते हैं।)

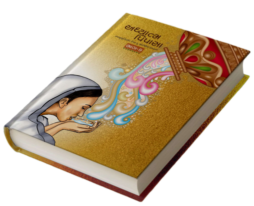

नया प्रकाशन (गुजराती)

‘अध्यात्म पिपासा’ (भाग–६)

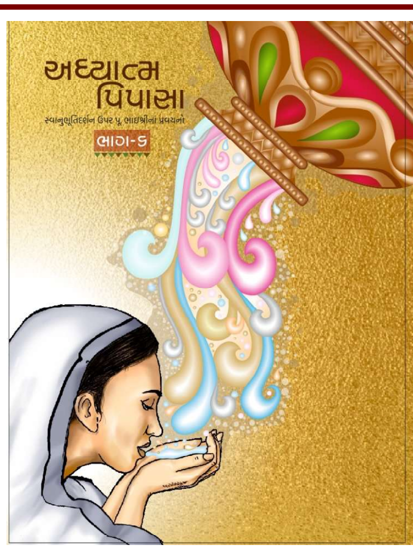

प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चाका ग्रंथ ‘स्वानुभूतिदर्शन’ पर अध्यात्मयोगी पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचनों की श्रृंखला ‘अध्यात्म पिपासा’ भाग–६ (केवल गुजरातीमें) पूज्य भाईश्री की ९३वीं जन्म जयंतिके अवसर पर दि : २८–११–२०२५ को प्रकाशित किया जायेगा। जो मुमुक्षु गुजराती भाषा से परिचित हों और इसके स्वाध्याय के लिये इच्छुक हों वे अपनी प्रत दि: ३०–१०–२०२५ तक रजिस्टर करवा लें।

– श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव वोरा ९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

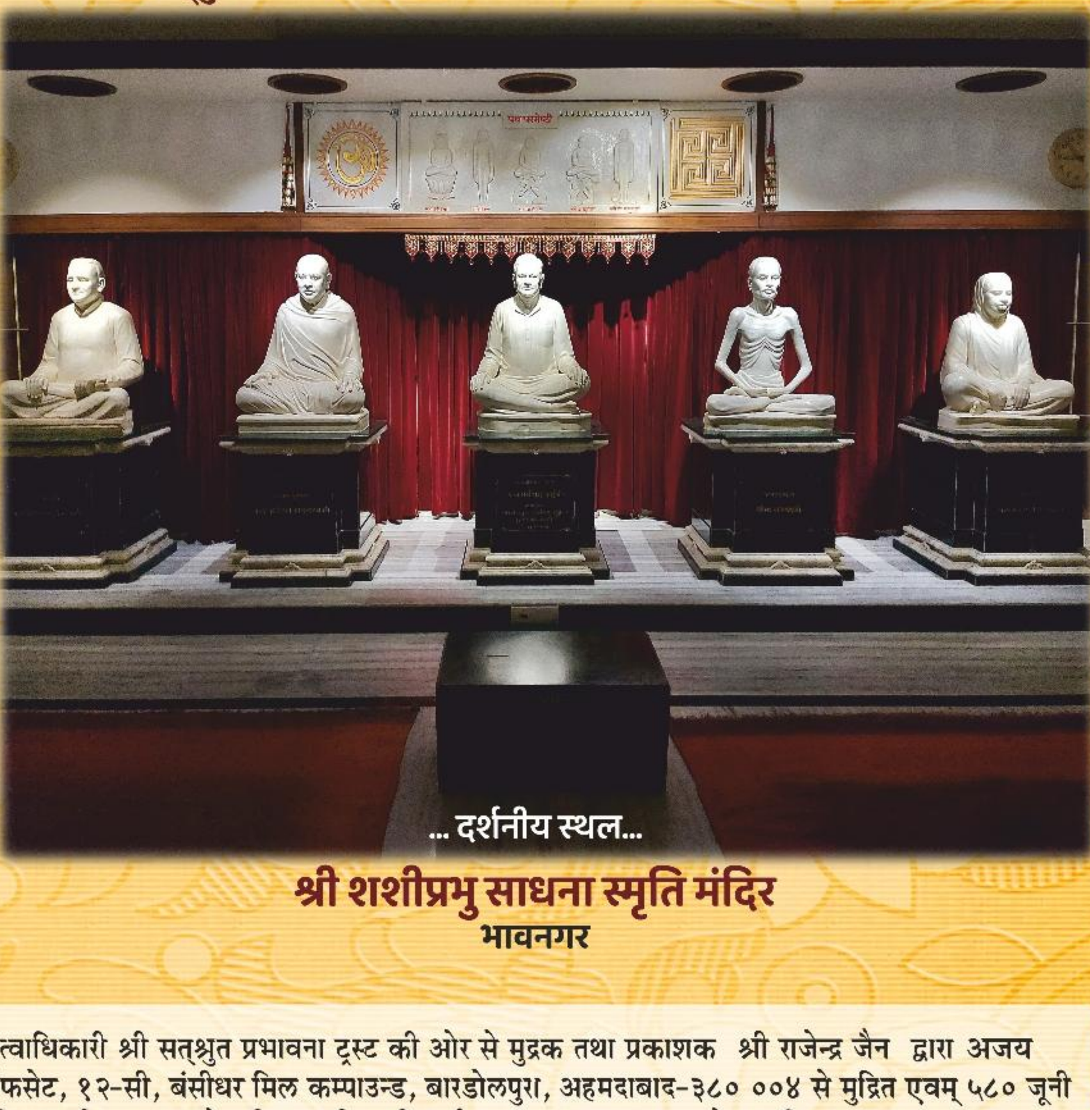

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition : **3565**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041